समयसार १९५ गाथा।

जह विसमुवभुंजंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।
पोग्गल-कम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव बज्झदे णाणी।।१९५।।

ज्यों जहर के उपभोग से भी, वैद्य जन मरता नहीं।
त्यों उदयकर्म जु भोगता भी, ज्ञानिजन बँधता नहीं।।१९५।।

टीका : जिस प्रकार कोई विषवैद्य, दूसरों के मरण के कारणभूत... दूसरे तो यदि खावे तो मर जाए, ऐसा जहर। **विष को भोगता हुआ भी, अमोघ (रामबाण) विद्या की सामर्थ्य से-** अमोघ विद्या, सफल विद्या, रामबाण विद्या। इस विद्या के प्रयोग से वैद्य जहर में मरने का है, वह नहीं रहता। **विद्या की सामर्थ्य से-विष की शक्ति रुक गयी होने से...** है? जहर की शक्ति वहाँ रुक जाती है। यह तो दृष्टान्त है। **नहीं मरता, उसी प्रकार अज्ञानियों को, रागादिभावों का सद्भाव होने से बन्ध का कारण...** ऐसा कहा था न पहले? **विषवैद्य, दूसरों के मरण के कारणभूत...** ऐसा कहा था। उसमें अज्ञानी (को) आत्मा के आनन्द के स्वाद की खबर नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है, उसकी उसे खबर नहीं। ऐसे अज्ञानियों को **रागादिभावों का सद्भाव होने से बन्ध का कारण जो पुद्गलकर्म का उदय...** आहाहा! **उसको ज्ञानी भोगता हुआ भी,...** भाषा समझाने के लिये तो ऐसा ही कहे न? बाकी वास्तव में तो धर्म ऐसी चीज़ है कि आत्मा के आनन्द के स्वाद में, उसे रागादि आवे, वह सब ज्ञानी को जहर जैसा लगता है। आहाहा! धर्म चीज़ कोई ऐसी है। साधारण कोई बात नहीं कि दया पालन की और व्रत किये और अपवास किये, (इसलिए) हो गया धर्म।

धर्म तो धर्मी ऐसा जो आत्मा, उसे स्पर्श कर जो ज्ञान और आनन्द आवे, उस ज्ञान और आनन्द के बल से अज्ञानी को जो कर्म भोगना बन्द होता है... आहाहा! **उसको ज्ञानी भोगता हुआ भी,...** आहाहा! **हुआ भी, अमोघ ज्ञान की सामर्थ्य...** उसमें अमोघ विद्या का सामर्थ्य था। इसमें अमोघ ज्ञान का सामर्थ्य (लिया)। आहाहा! यह ज्ञान का सामर्थ्य अर्थात्? चैतन्यस्वभाव पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागस्वरूप, ऐसा जो अनुभव में आया है, उस अनुभव के सामर्थ्य के बल द्वारा अज्ञानी को जो रागादि के कारण से बन्ध का कारण था, वह ज्ञानी को निर्जरा का कारण होता है। आहाहा! परन्तु कारण यह। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव, वह तो परमात्मस्वरूप है। परमस्वरूप, प्रत्येक गुण परमस्वरूप से पूर्ण विराजता है। ऐसे स्वरूप का स्वसंवेदन, स्व अर्थात् अपना सं (अर्थात्) प्रत्यक्ष; पर की अपेक्षा बिना वेदन हो, उस वेदन के समक्ष अज्ञानी को जो रागादि के कारण से उदय में बन्ध होता था, वह ज्ञानी को उदय में बन्ध नहीं होता। आहाहा! ऐसा चैतन्य का माहात्म्य है। ऐसा माहात्म्य कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का ऐसा माहात्म्य नहीं है। वह तो बन्ध के कारण हैं, संसार, घोर संसार है। आहाहा! तब भगवान आत्मा, पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का वेदन होने से ज्ञानी को; जो अज्ञानी को बन्ध का कारण है, वही ज्ञानी को निर्जरा का कारण है। है?

अमोघ ज्ञान की सामर्थ्य द्वारा रागादिभावों का अभाव होने से-... क्योंकि उसे राग का प्रेम ही नहीं है, जहर देखता है। आहाहा! आत्मा के अमृत के अतीन्द्रिय, अचिन्त्य, अनन्त काल में नहीं वेदन किया-जाना, ऐसा आत्मा का स्वभाव वेदन किया, उस स्वभाव के बल के जोर से। अमोघ बाण अर्थात् यह। आहाहा! **रागादिभावों का अभाव होने से-...** जरा राग है परन्तु राग का राग नहीं है। वीतरागस्वरूप प्रभु (विराजता है), उसके प्रेम में स्वसंवेदन के समक्ष राग की कुछ कीमत नहीं है। आहाहा! बाहर की चीज़ की तो कोई कीमत है ही नहीं। शरीर, पैसा और इज्जत, वह कोई चीज़ नहीं है। वह तो जगत की जड़ चीज़ है परन्तु आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष कर्म के उदय का राग आवे और भोगे भी सही... आहाहा! परन्तु ज्ञान और आनन्द के स्वाद की मिठास की अधिकता के कारण, उस राग में मिठास उड़ गयी है। ऐसी बात है। चाहे तो चक्रवर्ती का

राज है, परन्तु वह तो जड़ है, पर है। उसमें तो सुखबुद्धि उड़ गयी है, धर्मी को अपनी सुखबुद्धि हुई, इसलिए पर में से तो सुखबुद्धि उड़ गयी है। परन्तु राग में से भी सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! कितनी शर्तोंवाला धर्म! ऐसा धर्म है।

उस **अमोघ ज्ञान की सामर्थ्य द्वारा...** ज्ञान अर्थात् अकेला जानना, ऐसा नहीं। वह जानना, ऐसा तो ग्यारह अंग का ज्ञान अनन्त बार हुआ, परन्तु ज्ञानस्वरूप ऐसा आत्मा, उसे स्पर्श कर स्वसंवेदन हो। स्व (अर्थात्) अपना, सं (अर्थात्) प्रत्यक्ष। पर और राग के विकल्प और पर की अपेक्षा बिना (हुआ ज्ञान), उस वेदन के बल से उसे राग के वेदन में प्रेम और रुचि नहीं हुई; इसलिए वह राग खिर जाता है। आहाहा! **बन्ध को प्राप्त नहीं होता।** है?

रागादिभावों का अभाव होने से-कर्मोदय शक्ति रुक गयी होने से,... आहाहा! कर्म का उदय है, नये बन्ध का कारण होता है, वह शक्ति रुक गयी है। आहाहा! अमोघ आत्मा के आनन्द के स्वाद के सामर्थ्य द्वारा **रागादिभावों का अभाव होने से...** (अर्थात्) राग का राग न होने से। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। उसी प्रकार जिसे आत्मबुद्धि, सुखबुद्धि अन्दर में उत्पन्न हुई, उसे राग में सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! परद्रव्य की तो बात ही क्या करना? परद्रव्य में तो कहीं है ही नहीं, सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं, वह तो ज्ञेय है। परन्तु पर्याय में राग है, (वह) दुःख है और ज़हर है। चाहे तो शुभराग हो तो भी घोर संसार है। भगवान आत्मा राग की आकुलतारहित चीज़, ऐसी अनाकुल चीज़ के वेदन के समक्ष राग का भाग आवे, तो भी उसका वेदन नहीं है। वेदता है, यह तो पहले थोड़ा आ गया, वह अलग, परन्तु स्वामीपना, स्वामित्वरूप से वेदन नहीं है, मेरेपने से वेदन नहीं है। आहाहा! ऐसा धर्म।

रागादिभावों का अभाव होने से-कर्मोदय शक्ति रुक गयी होने से,... आहाहा! क्या कहते हैं? पूर्व का जो कर्म का उदय है, उससे राग होकर बन्धन होता है, वह शक्ति रुक गयी। कर्मोदय के उदय की शक्ति, उसके लक्ष्य से जरा राग हुआ, वह भी रुक गया। राग का रस नहीं रहा, ज़हर है। आहाहा! जिसे इन्द्र के इन्द्रासनों के भोग ज़हर जैसे दिखते हैं। समकिती को आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन और इन्द्राणियों के भोग ज़हर जैसे दिखते हैं। इस कारण से कर्मोदय की शक्ति जो बन्ध का कारण हो, ऐसा राग हो, वह राग इसे नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : कर्म तो पुद्गल है, उसकी शक्ति किस प्रकार रुके ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति अर्थात् कर्म होकर यहाँ राग होता है, उसमें निमित्त होता है न ? यहाँ तो कहते हैं, उसे राग ही नहीं होता—ऐसा कहते हैं। कर्मोदय की शक्ति अर्थात् वह तो जड़ है, परन्तु उसके लक्ष्य से जरा राग होता है, वह राग हुआ, वह इसे हुआ ही नहीं, कहते हैं। क्योंकि उदय आया तो उसका बन्ध का कारण होता है, परन्तु यहाँ बन्ध का कारण नहीं होता। इसलिए कर्मोदय की शक्ति रुक गयी, राग ही हुआ नहीं। हुआ, वह हुआ नहीं। हुआ, वह हुआ नहीं। आहाहा!

अपने आनन्द के खिंचाव के समक्ष, सम्यग्दर्शन अर्थात् अपने आनन्द का खिंचाव हो गया है। जैसे लोहचुम्बक सुई खेंचती है; उसी प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द का खिंचाव हो गया है। उसके प्रेम और खिंचाव से कर्मोदय से जरा राग हुआ, उसका खिंचाव टल गया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अत्यन्त निवृत्तस्वरूप है। सारी दुनिया के पदार्थों से तो निवृत्तस्वरूप है, परन्तु रागादि का विकल्प उठे, उससे भी प्रभु तो निर्विकल्पस्वरूप, अत्यन्त निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! ऐसे निवृत्तस्वरूप का जहाँ अन्दर स्वाद आया, उसका स्वसंवेदन आया... आहाहा! उसमें जो आनन्द, ज्ञान और शान्ति थी, उसका नमूना जहाँ दशा में आया, उस वेदन के समक्ष राग की कोई कीमत नहीं रही। आहाहा! ऐसा मार्ग है। राग आता है तो भी उसकी कीमत नहीं रही। अनमूल्य चीज़ का जहाँ मूल्य हुआ... आहाहा! अनमोल चीज़ प्रभु है, उसका जहाँ मूल्य अर्थात् कीमत जहाँ हुई, वहाँ रागादि की कीमत उड़ जाती है।

इसीलिए कर्मोदय के उदय की शक्ति रुक गयी है, ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ यह कि उदय से जो बन्ध होता है, वह बन्ध नहीं होता। आहाहा! इस ओर विशेष उदय हो गया है। अतीन्द्रिय स्वसंवेदन और आनन्द के जोर के बल से वह शक्ति रुक गयी, यह शक्ति बढ़ गयी। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का दल, जैसे मक्खन का पिण्ड हो, वैसे यह प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। आहाहा! उसका जहाँ वेदन आया, उस वेदन के समक्ष कर्मोदय से हुआ जरा राग... हुआ है कमजोरी के कारण, परन्तु उससे फिर बन्ध नहीं होता। ऐसा स्वरूप है।

जिसे अभी यह बात ज्ञान में भी नहीं आती, वह वेदन में कब आवे ? आहाहा ! ज्ञान में भी अभी यह बात बैठती नहीं और यह दया, दान और व्रत और यह विकल्प हैं, वे कारण होंगे, (ऐसा मानता है)। कारण होंगे, उनका प्रेम कैसे जाए ? आहाहा ! उनसे लाभ होगा, उन्हें अपने से भिन्न कैसे माने ? उनसे आकर्षण कैसे विमुख हो ? आहाहा ! अज्ञानी को राग आकर्षण करता है। आहाहा ! क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख का नीर भरा है। अतीन्द्रिय सुख का सागर भरा है। ऐसे सुख के सागर के नमूने में, नमूने में... पूरा स्वाद तो पर्याय में कहाँ से आवे ? आहाहा ! सुमनभाई ! है वहाँ कहीं तुम्हारे ? नहीं कहीं। वहाँ पैसा है। इतना अधिक पैसेवाला, तीन-चार करोड़ रुपये की आमदनी। बड़े राजा की तरह। धूल में सब भिखारी है, रंक है।

आत्मा की बादशाही, अनन्त गुण से भरपूर भगवान का आदर छोड़कर एक राग के कण को, उसके फलरूप से प्राप्त सामग्री का आदर करता है, वह भगवान का अनादर करता है। आहाहा ! और जिसे भगवान आत्मा का आदर हुआ, अनुभव करके, हों ! स्वसंवेदन होकर... आहाहा ! यह चीज़ दुनिया में कहीं, इसके समक्ष किसी की कीमत नहीं। आहाहा ! ऐसा जो आत्मज्ञान... आत्मज्ञान न ? निमित्त का, राग का और पर्याय का ज्ञान, ऐसा नहीं कहा। आत्मज्ञान। वस्तु है, उसका ज्ञान। आहाहा ! उस ज्ञान में आनन्द आने पर कर्मोदय की शक्ति राग से नया बन्धन होना चाहिए, वह रुक जाता है। देवीलालजी ! ऐसी बात है। आहाहा !

मुमुक्षु : राग एकदम रूखा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : रूखा नहीं, अब है ही नहीं। है ही नहीं ? आहाहा ! काला नाग ऐसे देखे, वहाँ नजदीक जाता होगा ? पाँच हाथ का लम्बा काला, मोटा (नाग देखे तो) नजदीक जाता होगा ? आहाहा ! इसी प्रकार आत्मा के आनन्द के स्वस्वाद के समक्ष राग है, वह काला नाग है। यह शुभराग, हों ! अशुभराग के पाप हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना की तो बात क्या करना ? बापू ! वह तो... आहाहा !

ज्ञानी को शुभराग में प्रेम नहीं आता। आहाहा ! यह अन्तर स्व के वेदन का है। अनादि का जो राग का वेदन था, कर्मचेतना का वेदन था, वह जहाँ ज्ञान का वेदन होता है— ज्ञानचेतना, पर्याय में, हों ! आहाहा ! अकेली ज्ञानचेतना नहीं, ज्ञान के साथ आनन्द का

चेतना-वेदना। आहाहा! अनन्त गुणों की शक्ति की व्यक्ति का वेदन करना। आहाहा! उसे पूर्व के कर्म का उदय, अज्ञानी को बन्ध का कारण है, वह इसे (ज्ञानी को) बन्ध का कारण नहीं होता। आहाहा! देखो! यह वीतरागमार्ग। आहाहा!

जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर वीतराग ने जिसे खान खोलकर बतलाया कि आहा! तेरी खान में तो प्रभु! अनन्त-अनन्त गुण भरे हैं। पार नहीं होता, पार नहीं होता, भाई! क्षेत्र से देखो तो छोटा शरीरप्रमाण लगता है, परन्तु तू भाव से देख तो प्रभु! पार नहीं है। आहाहा! उस खान में इतने गुण और इतनी शान्ति और इतना आनन्द और इतनी स्वच्छता और इतनी प्रभुता भरी है कि एक-एक गुण का अन्त नहीं आता। अनन्त गुण की संख्या का तो अन्त नहीं आता... आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण की संख्या का तो अन्त नहीं आता परन्तु एक-एक गुण की शक्ति के सामर्थ्य का अन्त नहीं आता। आहाहा! ऐसे गुण के वेदन के समक्ष धर्मी को कर्म का उदय बन्ध का कारण, वह रुक जाता है। ऐसी बात है। इतने अपवास करे, इसलिए रुक जाता है; ऐसा मन्दिर बनावे, पाँच-पचास लाख खर्च करके मन्दिर बनावे, उसके साथ क्या है? लोग बाह्य की प्रवृत्ति देखकर उसमें से माप निकालते हैं कि इसने कुछ किया। किया, पर के कर्तापने की बुद्धि की है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु है, उसने अन्दर क्या किया? महाप्रभु विराजता है, वह राग की आड़ में प्रभु तुझे दिखायी नहीं देता। विशाल समुद्र पानी से भरा हो, चार हाथ की पर्यंच—कपड़ा यदि किनारे डाले तो नहीं दिखता, भरा हुआ समुद्र नहीं दिखता। इसी प्रकार भगवान अनन्त गुण से, शान्ति-आनन्द से भरपूर भगवान है। परन्तु राग के कण की मिठास की पट्टी कपड़े के आड़ में प्रभु नहीं दिखायी देता। आहाहा! कान्तिभाई! ऐसा कभी सुना नहीं। आहाहा! पोपटभाई के साले के पास बहुत पैसा था। (उसका) लड़का आया था। तुम्हें खबर है? तुम वहाँ थे? वहाँ आया था, मुम्बई आया था, चरणवन्दन किया था। ऐसा बोला, मेरे पिताजी को आने का भाव था, ऐसा बोला। रामजीभाई थे न? मेरे बापू का भाव था, ऐसा बोला। यहाँ आया, इसलिए (बोलना पड़े)। दो-ढाई अरब रुपये। रचपच गया, मर गया। अर.. र..!

यह तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अरबों गुणों का पार नहीं। अनन्त अरब, हों! अनन्त अरब जो अन्तिम अनन्त अरब में अन्तिम अनन्त जिसमें नहीं। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका जिसने पता लिया। आहाहा! जिसके पाताल का पार नहीं होता, उसका पता लिया। कहा था न पहले? जगत का पानी है, पाताल कहते हैं, परन्तु उसका अन्त आ जाता है। पाताल के नीचे नरक है। चाहे जितने पानी गहरा... गहरा... गहरा हो परन्तु तुरन्त पहले नरक का पासड़ा है। एक हजार योजन में है। उसके ऊपर पानी होता है, पानी अन्दर नहीं है। आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड में जमीन बहुत है और पानी थोड़ा है, पाताल थोड़ा है। आहाहा! इस भगवान में पाताल बहुत है। आहाहा! ऐसा जिसे अन्दर भान हुआ, उसे अब बन्धन नहीं होता। इसलिए अबन्धस्वरूपी का वेदन आया।

अबन्धस्वरूपी भगवान मुक्तस्वरूपणी है। आत्मा मुक्तस्वरूप है, उस मुक्तस्वरूप की पर्याय में अंश में जहाँ मुक्ति आयी, आहाहा! उसके समक्ष बन्धन की कोई कीमत नहीं रही। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, उसकी भी कीमत नहीं रही। आहाहा! आता है, भाव आता है, होवे उसका मूल्य, आँक न रह्या अब। मूल्य करता था कि ओहो! ओहो! ओहो! उस अमूल्य चीज़ को देखने पर उस राग की मूल की सब कीमत उड़ गयी। आहाहा! ऐसा कैसा धर्म? आहाहा! बापू! इसने एक समय भी वहाँ नजर नहीं की है। जहाँ निधान भरे हैं, वहाँ एक समय नजर नहीं की है और जिसमें कुछ नहीं है, उसमें अनन्त काल से वहाँ नजरबन्दी हो गयी है। नजरबन्दी! आहाहा! नजर से बँध गया है। आहाहा! राग और राग के फल में जिसे नजर बँध गयी है, उसकी नजर अन्तर में नहीं जाती। आहाहा! और अन्तर में जिसकी नजर गयी, उसे राग और राग के फल की नजरें और कीमत नहीं रहती। आहाहा! घीयाजी! पैसे-बैसे की तो धूल भी कुछ कीमत नहीं है, यहाँ ऐसा कहते हैं। करोड़ोंपति, अरबोंपति और धूलपति। धूलपति! यह चैतन्यपति! आहाहा!

भावार्थ : जैसे वैद्य मंत्र, तंत्र, औषधि इत्यादि अपनी विद्या की सामर्थ्य से विष की घातकशक्ति का अभाव कर देता है... आहाहा! आचार्य दृष्टान्त कैसा देते हैं! कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त है—'विषभुजन्तो'। आहाहा! **जिससे विष के खा लेने पर भी उसका मरण नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी के ज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है...** ज्ञानी को आनन्द और शान्ति आयी है, इसलिए इतना सामर्थ्य है। अकेले जानपने की बात नहीं है। आहाहा! ज्ञानी को ज्ञान का अर्थात् आत्मा का (सामर्थ्य है)। अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण जितने हैं, (उन) सबका सामर्थ्य पर्याय में भान हो गया है, वेदन में आ गया

है, भगवान को भरोसे में ले लिया है। आहाहा! राग के भरोसे जो रमता था, उसने आत्मा भगवान है, उसे भरोसे में ले लिया है। उसका भरोसा अब टलता नहीं। आहाहा! उस भरोसे के समक्ष तीर्थंकरगोत्र के भाव का भरोसा, (उसकी) भी कीमत उड़ गयी है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। लोगों को सोनगढ़ का एकान्त लगता है, हों! दूसरा सब चारों ओर से चलता है न, इसलिए यह एकान्त लगता है। बापू! है तो एकान्त ही यह। एकान्त ही है, सम्यक् एकान्त है। आहाहा! प्रभु पूर्णानन्द का नाथ जहाँ अन्दर में ढलता है, वह सम्यक् एकान्त है। आहाहा! उसके समक्ष दया, दान, व्रत और अपवास के परिणाम की कोई कीमत ही नहीं है। कीमत होवे तो ज़हर की कीमत हो, वैसी कीमत है। आहाहा!

धर्मी को आत्मा का सामर्थ्य ऐसा है कि, ज्ञान का लिखा न? **कि वह कर्मोदय की बन्ध करने की शक्ति का अभाव करता है...** देखा? (टीका में) अन्तिम आया था न? कर्मोदय की शक्ति रुक गयी है, उसका अर्थ किया। कर्मोदय है और उसके कारण राग होता है और बन्ध होता है, वह रुक गया है, **अभाव करता है...** आहाहा! **ऐसा होने से कर्मोदय को भोगते हुए भी...** जरा राग आता है, कहते हैं। और राग को भोगता-वेदता भी है परन्तु वह ज़हर का वेदन लगता है। आहाहा! अमृत के चौसले के स्वाद के समक्ष ज़हर का-राग का स्वाद उसे नहीं आता। आहाहा! इसलिए उसे राग होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग समझना। वह तो दया, दान, व्रत, भक्ति और अपवास (करने का कहे तो) समझ में तो आये। बापू! क्या समझ में आये? भाई! जिसमें जन्म-मरण नहीं रुके, बापू! उस चीज़ में क्या है? तेरे अरबों रुपये दान में दे, अरबों के मन्दिर बना, उससे क्या हुआ? वह कोई अपूर्व चीज़ नहीं है। आहाहा! अपूर्व चीज़ तो उस राग के कण से भी भिन्न पड़कर प्रभु का स्वाद लेने पर जो अनुभव आवे... आहाहा! उस अनुभव के समक्ष कर्म की शक्ति रुक गयी है, अभाव करता है।

ऐसा होने से कर्मोदय को भोगते हुए भी... धर्मी को धर्म ऐसी जो आनन्द और शान्ति ऐसी प्रगट दशा हुई, इसलिए, आहाहा! **आगामी कर्मबन्ध नहीं होता। इस प्रकार सम्यक्ज्ञान की सामर्थ्य कही गयी है।** सम्यग्ज्ञान का सामर्थ्य। सम्यक्—जैसी चीज़ पूर्ण है, वैसा उसका सत्य ज्ञान। जैसा पूर्ण स्वभाव है, खजाना—अनन्त गुण का खजाना भगवान, उसका सम्यक्—सत्य जैसा है, वैसा ज्ञान हुआ, उस सम्यग्ज्ञान का सामर्थ्य इस गाथा में कहा है। अब जरा वैराग्य की बात करेंगे। यह अस्ति से बात की है।

गाथा - १९६

अथ वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति-

जह मज्जं पिबमाणो अरदीभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव।।१९६।।

यथा मद्यं पिबन् अरतिभावेन माद्यति न पुरुषः।
द्रव्योपभोगेऽरतो ज्ञान्यपि न बध्यते तथैव।।१९६।।

यथा कश्चित्पुरुषो मैरेयं प्रति प्रवृत्ततीव्रारतिभावः सन् मैरेयं पिबन्नपि तीव्रारतिभाव-सामर्थ्यान्न माद्यति तथा रागादिभावानामभावेन सर्वद्रव्योपभोगं प्रति प्रवृत्ततीव्रविरागभावः सन् विषयानुप-भुञ्जानोऽपि तीव्रविरागभावसामर्थ्यान्न बध्यते ज्ञानी।।१९६।।

अब वैराग्य का सामर्थ्य बतलाते हैं:-

ज्यों अरतिभाव जु मद्य पीकर, मत्त जन बनता नहीं।
द्रव्योपभोग विषैं अरत, ज्ञानी पुरुष बँधता नहीं।।१९६।।

गाथार्थ : [यथा] जैसे [पुरुषः] कोई पुरुष [मद्यं] मदिरा को [अरतिभावेन] अरतिभाव से (अप्रीति से) [पिबन्] पीता हुआ [न माद्यति] मतवाला नहीं होता, [तथा एव] इसी प्रकार [ज्ञानी अपि] ज्ञानी भी [द्रव्योपभोगे] द्रव्य के उपभोग के प्रति [अरतः] अरत (वैराग्यभाव में) वर्तता हुआ [न बध्यते] बन्ध को प्राप्त नहीं होता।

टीका : जैसे कोई पुरुष, मदिरा के प्रति जिसको तीव्र अरतिभाव प्रवर्ता है, ऐसा वर्तता हुआ, मदिरा को पीने पर भी, तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य के कारण मतवाला नहीं होता; उसी प्रकार ज्ञानी भी, रागादिभावों के अभाव से सर्व द्रव्यों के उपभोग के प्रति जिसको तीव्र वैराग्यभाव प्रवर्ता है, ऐसा वर्तता हुआ, विषयों को भोगता हुआ भी, तीव्र वैराग्यभाव की सामर्थ्य के कारण (कर्मों से) बन्ध को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ : यह वैराग्य सामर्थ्य है कि ज्ञानी विषयों का सेवन करता हुआ भी कर्मों से नहीं बँधता।

गाथा - १९६ पर प्रवचन

अब वैराग्य का सामर्थ्य बतलाते हैं:- देखा? क्या कहते हैं? भगवान परिपूर्ण परमात्मा, उसका भान ज्ञान और आनन्द का नमूना वेदन किया, उसकी सामर्थ्य के कारण कर्म का उदय भी खिर जाता है। उसे बन्धन नहीं होता। यह अस्ति से बात की। अस्ति अर्थात् ऐसा आत्मा है, उसके आश्रय से आनन्द आया, इसलिए उसे कर्मबन्धन नहीं होता, ऐसा अस्ति से कहा। अब वैराग्य से कहते हैं। जिसे ऐसे अस्तित्व का भान हुआ, उसे पुण्य और पाप के विकल्प का वैराग्य वर्तता है। आहाहा! जो अनादि से पुण्य के परिणाम में रक्तपना था, वह विरक्त होता है। अपने पूर्ण अस्तित्व के प्रेम के आनन्द के समक्ष वह राग से विरक्त होता है, इसका नाम वैराग्य है। वैराग्य कोई यह वस्त्र बदल डाले और एकाध पतला पहना, इसलिए वह वैरागी हुआ (—ऐसा नहीं है)। आहाहा! कुर्ता निकाल डाला और उघाड़ी धोती पहनी, इसलिए हो गया त्यागी, (ऐसा नहीं है)। बापू! कठिन बातें, भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, वैराग्य का सामर्थ्य। ऊपर संस्कृत में है न? '**अथ वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति**' अनुभव का सामर्थ्य बताया परन्तु अब पर से अभाव, पुण्य-पाप के दोनों भाव से वैराग्य, इसका सामर्थ्य क्या है, यह बताते हैं।

जह मज्जं पिबमाणो अरदीभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव।।१९६।।

ज्यों अरतिभाव जु मद्य पीकर, मत्त जन बनता नहीं।
द्रव्योपभोग विषैं अरत, ज्ञानी पुरुष बँधता नहीं।।१९६।।

यह वैराग्य की बात है। **टीका - जैसे कोई पुरुष, मदिरा के प्रति जिसको तीव्र अरतिभाव प्रवर्ता है...** जिसे मदिरा के प्रति तीव्र अरतिभाव प्रवर्तित हुआ। आहाहा! **ऐसा वर्तता हुआ,...** पहली शर्त यह। **मदिरा के प्रति जिसको तीव्र अरतिभाव प्रवर्ता है...** रति (का) अंश रहा नहीं। आहाहा! **ऐसा वर्तता हुआ, मदिरा को पीने पर भी,...** आहाहा! यह तो न्याय देते हैं, हों!

मदिरा को पीने पर भी,... मदिरा न पीवे और गहलता न हो, यह और अलग

बात, परन्तु यह तो पीता है और गहलता नहीं होती। आहाहा! मदिरा पीवे और मदिरा का रस न चढ़े। आहाहा! **मदिरा को पीने पर भी, तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य के कारण मतवाला नहीं होता,...** मूर्च्छित नहीं हो जाता, गहल नहीं होता, पागल नहीं होता। मदिरा के कारण जो पागल हो जाता है, वह इस मदिरा के प्रति अप्रेम और अरतिभाव के कारण, किसी कारणवश मदिरा पीना पड़ा, तथापि वह मद उसे चढ़ता नहीं है। उसे मदिरा का मद चढ़ता नहीं है। आहाहा!

उसी प्रकार ज्ञानी भी,... धर्मी भी। स्वरूप का रसीला धर्मी, आहाहा! **रागादिभावों के अभाव से...** उसे राग का रस उड़ गया है। स्वरूप के रसिकपने के समक्ष जिसे राग का रस, उत्साह, उल्लसित वीर्य, होंश, हर्ष... आहाहा! उड़ गया है। आहाहा! उसी प्रकार धर्मी भी। धर्मी अर्थात् आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभवी। आहाहा! वह धर्मी। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसका जिसे वेदन है, वह ज्ञानी है। वह ज्ञानी भी। 'भी' क्यों (कहा)? उस मदिरा का दृष्टान्त दिया है न, इसलिए।

रागादिभावों के अभाव से... उस मदिरा पीनेवाले को अरति है। प्रेम नहीं परन्तु किसी कारण से (पीना पड़ता है)। अपने देते हैं न? किसी समय महिलाओं को प्रसूति में देते हैं। उसे कुछ रस नहीं होता। बनिया या ब्राह्मण प्रसूति में ऐसा होवे तो सहज देते हैं परन्तु रस नहीं होता, रस। मदिरा का वह (नशा) उसे नहीं चढ़ता। आहाहा! उसी प्रकार धर्मी भी रागादि भावों के अभाव से... भले दूसरा थोड़ा राग हो परन्तु मूल अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व सम्बन्धी जो राग (था), वह रस टूट गया और जो रस अनन्त काल में नहीं था, वह रस आया। आहाहा! अनन्त-अनन्त अतीत काल में प्रभु का रस नहीं था, ऐसा आत्मरस जहाँ आया... आहाहा! उसे **रागादिभावों के अभाव से...** उसे राग के रस के अभाव से।

रस की व्याख्या की है न? किसी भी ज्ञेय में एकाग्र होना। रस की व्याख्या आती है पहले-शुरुआत में। समयसार नाटक। आहाहा! किसी भी ज्ञेय में एकाकार होना, इसका नाम रस है। नवरस नहीं कहे? शृंगाररस और अद्भुतरस और... आता है न? नौ। नाटकरूप से वर्णन किया है न? आहाहा! उस रस के वर्णन में शान्तरस का वर्णन बताते हुए उसमें यह वर्णन किया है। बताना है शान्ति... शान्ति...। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, धर्मी को भी... आहाहा! धर्मी किसे कहते हैं? भाई! आहाहा! यह तो अपवास किये और

वर्षीतप किया और यह किया, दो-चार मन्दिर बनाये, (इसलिए मानता है कि) हो गये धर्मी। शास्त्र का जानपना किया, लो न! लोगों को सुनाया, (इसलिए मानता है कि) हो गये धर्मी। आहाहा! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है।

यहाँ कहते हैं, धर्मी को रागभाव के अभाव से; राग का भाव ही नहीं है, यहाँ कहते हैं। आत्मा के आनन्द के रस के समक्ष राग का रस ही उड़ गया है। आहाहा! **सर्व द्रव्यों के उपभोग के प्रति...** वजन यहाँ दिया। **सर्व द्रव्यों के उपभोग के प्रति...** देखा? किसी भी द्रव्य के उपभोग के प्रति। आहाहा! स्वद्रव्य के आनन्द का जहाँ स्वाद आया... आहाहा! जहाँ अमृत का सागर उछला, सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में जहाँ अमृतरस चखा... आहाहा! कहते हैं, **सर्व द्रव्यों के उपभोग के प्रति...** चाहे तो इन्द्र को इन्द्राणी का भोग हो... आहाहा! या चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ हों। एक स्त्री की हजार देव सेवा करे। सभी द्रव्यों के प्रति। सब द्रव्य लिये हैं न? एक स्वद्रव्य के प्रेम के समक्ष सर्व द्रव्यों का प्रेम उड़ गया है। आहाहा! एक ओर राम और एक ओर गाँव।

भगवान आत्मा! आहाहा! उसका जिसे रस आया है, रस चखा है, कहते हैं। उसे पर में रागादिभाव, सर्व द्रव्यों के उपभोग (के प्रति) **जिसको तीव्र वैराग्यभाव प्रवर्ता है...** आहाहा! आहा! स्त्री आदि हो, उसे नग्नपना हो और माता नहाती हो, खाट की आड़ रखकर अन्दर नहाती हो, उसमें वस्त्र आड़े न हो और नग्नपना हो, नहाने के लिये खड़ी हो गयी और लड़का आया, है नजर जरा भी? आहाहा! माता नहाती है। सामने नहीं देखता। उसके शरीर के सामने नहीं देखता। आहाहा! उसी प्रकार जहाँ आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष सर्व द्रव्यों के प्रति रस उड़ गया है, कहते हैं। एक द्रव्य के रस के समक्ष सर्व द्रव्यों का रस उड़ गया है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई!

ज्ञानी अर्थात् स्वद्रव्य के रसिक जीव (को) रागादिभाव के रस और सर्व द्रव्यों के उपभोग के प्रति रस उड़ गया है। **जिसको तीव्र वैराग्यभाव...** अकेला वैराग्य नहीं है, **तीव्र वैराग्यभाव प्रवर्ता है...** आहाहा! जामनगर में विशाश्रीमाली बनिया था। वह चूरमा ही खावे, बस! रोटी, रोटी नहीं खाता था, प्रतिदिन चूरमा ही खावे। उसमें जवान लड़का मर गया। जलाकर आये। वह कहे रोटी, रोटी बनाओ। भाई! परिवार इकट्ठा हुआ। तुम्हें ठीक नहीं पड़ेगा, बापू! तुमने रोटी-वोटी खायी नहीं। आहाहा! इकलौता लड़का जलाकर

आये (और) चूरमा बनाया। यह जामनगर में बना है। नहीं है कोई जामनगर के? विशाश्रीमाली। वह चूरमा (खाता है) और आँख में से आँसू की धारा बहती जाती है और चूरमा खाता है। है रस? आहाहा! रोटी ज्वार की कहो या चूरमा कहो, उसे तो दोनों समान हैं। आहाहा! अरेरे! प्रिय में प्रिय पुत्र इकलौता चला गया। आहाहा! भाई! तुम दूसरा खाओगे तो बीमार पड़ोगे। तुमने कभी खाया नहीं। खुराक ही चूरमा की, बस! आहाहा! वसा, वसा था। आहाहा! सुना हुआ है। उन भाई की आँखों में से आँसू बहते जाते हैं (और) चूरमा खाते हैं। इसी प्रकार धर्मी को... आहाहा! वह तो राग में से मर गया है। और जीवित ज्योति को जहाँ अनुभव किया है। आहाहा! यह तो सब मर गये हैं। राग और मुर्दा, मुर्दा अचेतन अज्ञान। आहाहा!

तीव्र वैराग्यभाव प्रवर्ता है, ऐसा वर्तता हुआ, विषयों को भोगता हुआ भी,... वह चूरमा खाता है, तथापि आँख में से आँसू बहते जाते हैं। आहाहा! दूसरे का कोई दृष्टान्त है। लड़का मर गया, पश्चात् उसे तम्बाकू कहलाये, क्या कहलाता है तुम्हारे पीने का? हुक्का... हुक्का। हुक्का का रस बहुत। हुक्का पीवे। वह लड़का मर गया और घर आये। हुक्का बन्द किया। यह प्रिय में प्रिय लड़का गया, अब यह हुक्का मुझे क्या (करना है)? बन्द कर दिया। हुक्का का इतना रस था। बिल्कुल सामने नहीं देखा। इसी प्रकार आत्मा के रस के समक्ष पर के सामने नहीं देखता, कहते हैं। **विषयों को भोगता हुआ भी, तीव्र वैराग्यभाव की सामर्थ्य के कारण (कर्मों से) बन्ध को प्राप्त नहीं होता।** लो। **यह वैराग्य सामर्थ्य है कि ज्ञानी विषयों का सेवन करता हुआ भी कर्मों से नहीं बँधता।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)